□ श्री जवाहरलाल मुणोत,
[जैन समाज के प्रभावशाली नेता, अमरावती]

क्या जैन सम्प्रदायों का एकीकरण सम्भव है ?

□

लेख के शीर्षक से प्रतीत होता है कि जैन धर्म में भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों की मौजूदगी अगर बुरी नहीं तो अप्रस्तुत तो जरूर है और इसलिये उनका **एकीकरण** किया जाना चाहिये। परन्तु आप गहराई से देखें तो यह स्पष्ट होगा कि संसार के प्रत्येक प्रमुख धर्म में बहुत जल्द सम्प्रदायों का उद्‌गम हो जाता है और इन अलग-अलग सम्प्रदायों में बंटा धर्म, उसके अनुयायियों के लिये किसी विशेष चिन्ता का कारण नहीं बनता। बौद्धों के हीनयान और महायान के मोटे विभेदों का हमें पता है परन्तु इन भेदों के अन्तर्गत अनगिनत सम्प्रदाय-विशेष वाले प्रभेद हैं। संसार के दूसरे बड़े धर्म ईसाई का भी यही हाल है। रोमन कैथोलिक और प्रोटेस्टेंटों के सम्प्रदायों ने धार्मिक असहिष्णुता का रक्तरंजित इतिहास सजा है। इस्लाम के शिया-सुन्नी सम्प्रदायों से भारतवासी परिचित हैं। और हिन्दू धर्म तो असंख्य सम्प्रदायों और शाखाओं का ही एक विशाल बरगद है।

तब जैन धर्म के चार प्रमुख सम्प्रदाय—दिगम्बर, श्वेताम्बर (मू० पू०), स्थानकवासी और तेरापंथी—एकीकरण की किन आवश्यकताओं की ओर संकेत करते हैं।

मैं यहाँ पर उन ऐतिहासिक और शास्त्रीय कारणों का उल्लेख नहीं करूँगा जो इन विभिन्न सम्प्रदायों की स्थापना के लिए उत्तरदायी माने जाते हैं। और मेरे इस तटस्थ भाव के लिये सबल कारण हैं। बात साफ यह है कि कोई भी सम्प्रदाय अपने जन्म और विकास को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखने का आदी नहीं। उसके लिये अपना सम्प्रदाय ही एकमात्र अपने धर्म का सही और उचित मार्ग है। अन्य संप्रदाय या तो सच्ची धर्म-व्याख्या से अनजान हैं अथवा धर्म की विडम्बना। एक बार आपने भिन्न-भिन्न संप्रदायों की गहराई से तथा वैज्ञानिक व्याख्या करनी शुरू कर दी तो बहुत जल्द हम अलग-अलग संप्रदाय वालों को अपनी-अपनी आस्तीनें चढ़ा कर, आपस में गाली-गलौज करते पायेंगे। अनेकांत दर्शन के आधार-स्तम्भ जैन धर्म का ही जब यह हाल है—जब जैन सम्प्रदाय वाले भी, अपने सम्प्रदाय के अलावा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्य सम्प्रदायों के बारे में धैर्य से बात सुनने-समझने को तैयार नहीं, तब भला दूसरे धर्मों के बारे में निन्दा का तो हमें अधिकार ही क्या है ?

बहुत मोटी बुद्धि से भी यह समझ में आ जाता है कि धर्म संस्थापक, दैवी शक्ति से विभूषित, अद्भुत प्रतिभा के धनी और जन-जन के मन पर अनिर्वचनीय प्रभाव पैदा करने वाली शक्ति के संयोजक होते हैं। उनकी वाणी, कर्म और विचार, समस्त मानव जाति के अन्तिम सुख, शान्ति और कल्याण के लिये समर्पित होते हैं। इसलिये उनके ईमानदार से ईमानदार शिष्य के लिये भी, उस युग-निर्माणक देव-पुरुष के कथन, उपदेश अथवा आचरण का सौ फीसदी स्वरूप समझ पाना शायद सम्भव हो भी जाय परन्तु उस कथन, उपदेश अथवा आचरण की जन-जन के लिये वैसी ही विशुद्ध व्याख्या कभी सम्भव हो ही नहीं पायेगी। आखिर व्याख्याता-शिष्य, स्वयं तीर्थंकर, भगवान या अवतार तो नहीं होता और इस प्रकार, प्रत्येक विशाल धर्म की सहज, ईमानदार और निश्छल व्याख्या के प्रयत्नों के बाद भी, बहुत जल्द धर्म की भिन्न-भिन्न व्याख्याएँ जन्म लेने लगती हैं। सम्प्रदायों का यही उद्गम है।

अगर यह सही है तब प्रश्न उठेगा—किन स्थितियों में, सम्प्रदायों का एकीकरण सम्भव है ? पहले हम एकीकरण का अर्थ समझ लें। जहाँ तक मैं समझता हूँ, **एकीकरण** का अर्थ, **विलीनीकरण** तो हो ही नहीं सकता। जिन विशिष्ट परिस्थितियों में प्रत्येक सम्प्रदाय ने जन्म लिया है, वे भला भविष्य में भी समाप्त कैसे हो सकती हैं ? अगर कोई असाधारण प्रतिभा और दैवी प्रेरणा का प्रतीक यह प्रयत्न भी करे तो डर यही है कि वह एक नये सम्प्रदाय को जरूर जन्म दे देगा, मौजूद सम्प्रदायों का विलीनीकरण सम्भव नहीं होगा। तब एकीकरण ? आप इसे हठ कहें या अपना-अपना आग्रह, कोई भी सम्प्रदाय न तो अपनी-अपनी व्याख्याओं और उन पर आधारित धार्मिक रस्मों में परिवर्तन करने को तैयार होगा और ना ही इस बात के लिये राजी होगा कि सम्प्रदाय अपने परिवर्तन-प्रचार को त्याग दे। ऐसी हालत में, शायद हम एकीकरण की बात, एक विरोधाभास के रूप में ही पेश कर रहे हैं ?

उप-सम्प्रदायों का संसार

शायद इसीलिये, देश-काल के समाज सुधारक और प्रखर प्रतिभाशाली विद्वानों ने सम्प्रदायों का एकीकरण के बजाय, उप-सम्प्रदायवाद की समाप्ति पर बल दिया। मैं स्थानकवासी हूँ। जानता हूँ, स्वयं इस जैन सम्प्रदाय में कितने छोटे-बड़े सम्प्रदाय हैं। सभी उप-सम्प्रदाय, केवल अपने आप को ही विशुद्ध और सही स्थानकवासी मानते हैं। लेकिन यह तो जरूर सम्भव है कि कम-से-कम विशिष्ट सम्प्रदाय के उप-सम्प्रदायों का एकीकरण कर डाला जाय और आम जनता में, केवल एक ही सम्प्रदाय की मान्यता सर्वव्यापी हो ? कमीबेशी, यही हालत आपको जैन धर्म के अन्य सम्प्रदायों में भी मिल जायेगी।

स्थानकवासी समाज की धुरी है—हमारे श्रमण। और हमारे आदरणीय श्रमण ही, उप-सम्प्रदायवाद की समाप्ति करने के लिये आसानी से एकमत नहीं होते। इन अनगिनत उपसम्प्रदायों का आधार केवल श्रमणवर्ग की भिन्नता है, उनका विभिन्न आचार-विचार है और है उनकी अपनी-अपनी व्यक्तिगत आचरण-शैली। मेरे लिये वैराग्य और श्रमण-जीवन का मनोवैज्ञानिक रहस्य समझना तो असम्भव है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परन्तु यह प्रकट है कि आत्म-कल्याण और आन्तरिक तप के इन अधिष्ठाताओं के लिये श्री संघ का अनुशासन स्वीकार करना और उस पर सतत आचरण करना बहुत कठिन होता है। फिर भी, श्री शासनदेव द्वारा ही, जगत्-कल्याण के लिये, श्रमण-संघों की अनुशासनबद्ध स्थापना जैन धर्म का एक निर्मम नियम है क्योंकि उसी सूरत में, आत्मकल्याण, जगत् कल्याण का पर्याय बन जाता है।

बीस बरसों से अधिक समय हुआ होगा जब उपसम्प्रदायवाद को एकसूत्री सम्प्रदाय का स्वरूप देने का स्थानकवासी समाज का एक महत्वपूर्ण प्रयोग शुरू हुआ था। श्रमण संघ का सादड़ी अधिवेशन में एकीकरण हुआ और यह आशा सुदृढ़ हुई कि इस एकता की शुरूआत, अन्त में सम्पूर्ण सम्प्रदाय के विशुद्ध एकीकरण को जन्म देगी। मैं यहाँ इतिहास की व्याख्या नहीं करूँगा। लेकिन स्थानकवासी समाज को पता है कि श्रमण-एकता का काल खण्ड बहुत छोटा रहा। एक के बाद एक, विभिन्न उप-सम्प्रदाय, अलग-अलग कारणों से फिर से उपसम्प्रदायों की स्थापना करने लग गये और श्रमण-एकता का स्वप्न टूट गया। जिस महा-मनीषी के गौरव के लिये यह अभिनन्दन ग्रन्थ रचा जा रहा है, उन्हीं आचार्य प्रवर श्री आनन्दऋषिजी महाराज साहब ने अपनी बहुमुखी प्रतिभा से इस एकता के मूल सूत्र अब भी जोड़ रखे हैं। परन्तु क्या हम इसे एकीकरण का सफल प्रयोग कह सकते हैं ?

नई पीढ़ी और उप-सम्प्रदायों का एकीकरण

मूल रूप से, मैं मानता हूँ कि जैन धर्म के प्रमुख सम्प्रदायों का एकीकरण तो सम्भव नहीं है, सद्भाव, एकत्रित और संयुक्त कामकाज, सहयोग और संयुक्त विकास अवश्य सम्भव है, हितकर भी है और आवश्यक भी। लेकिन यह भी मेरी मान्यता है कि इन चार प्रमुख सम्प्रदायों में, अंतर्गत उपसम्प्रदायों का आरम्भ में एकीकरण और अन्त में विलीनीकरण सम्भव भी है और आवश्यक भी। और मेरा विचार है कि इस बड़े काम के लिये, श्रावकों की भूमिका भविष्य में अधिक निर्णायक और प्रभावशाली रहेगी। मुझे खेद के साथ स्वीकार करना पड़ता है कि कम-से-कम निकट भविष्य में तो, श्रमणों में तो स्वयं स्फूर्ति से उत्पन्न एकीकरण सम्भव नहीं दिखलाई देता। अगर मौके बेमौके ऐसे प्रयत्न होंगे भी तो वे अल्पजीवी ही रहेंगे और उन्हें स्थायी स्वरूप दे पाना बहुत कष्टसाध्य बात होगी। लेकिन इस अहम् सवाल पर हम श्रावकों को क्यों भूल जाते हैं ?

जरा जैन धर्मावलम्बियों की नई पीढ़ी की ओर देखिये। वे अगर आज जैनी हैं तो इसीलिये कि उनके मां-बाप जैनी हैं और एक विशिष्ट सम्प्रदाय के हैं ? परन्तु धर्माचरण और धर्म के प्रति अगाध श्रद्धा क्या विरासत में मिलती है ? क्या इस बात की कोई गारण्टी है कि विशिष्ट सम्प्रदाय अथवा उप-सम्प्रदाय की सन्तान उसी सम्प्रदाय की बिला हीला-हुज्जत श्रावक-श्राविका बनी रहेगी ? यह तो नई पीढ़ी के साथ अन्याय भी होगा और उसकी शक्ति को अनदेखा करने जैसा होगा।

अगर हमारे इस युग की नौजवान पीढ़ी को अपने धर्म से, अपने सम्प्रदाय से अभिन्न लगाव होगा तो उसमें तर्क, बुद्धि और भावना का त्रिवेणी संगम होगा। केवल गतानुगति और परिवार की रुचि निर्णायक नहीं रह सकती। और इस नये युग की नई जैन स्थानकवासी श्रावक समाज की सामूहिक शक्ति स्वाभाविक ही, उपसम्प्रदायवाद को समाप्त कर सकेगी। हमारे लिये मुख्य कार्य है, उस आधार को तैयार करना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जो नये युवक-युवतियों में सम्प्रदाय विशेष को एकीकरण के रूप में ही अंगीकार करेगा। जो नव-श्रावक-श्राविकाओं को समग्र जैन धर्म के प्रति सच्ची आस्था और सम्प्रदाय के प्रति सही जानकारी और अनेकान्तवादी आसक्ति से ओतप्रोत होगा।

इसीलिये, मैं आशावादी हूँ क्योंकि उपसम्प्रदाय के एकीकरण के लिए, अमली रूप से हमने अब तक श्रावक-शक्ति का उपयोग ही कब किया है ? अगर श्रमण एक संघीय एकता के लिए तत्पर नहीं हैं या उसे कर पाने में कम-से-कम फिलहाल असमर्थ हैं तो चिन्ता की क्या बात है ? आधुनिक श्रावक तो एक हो ही सकते हैं और ऐसी स्थितियों को जन्म दे सकते हैं जो अन्ततोगत्वा सम्प्रदाय के एकीकरण और श्रमण संघ की सतही नहीं—मूलभूत एकता की पुनर्स्थापना करें।

आचार्य प्रवर श्री आनन्द ऋषिजी महाराज का इससे श्रेष्ठ अभिनन्दन क्या हो कि उनके ७५ वें सौभाग्यशाली जन्म-दिवस पर, सम्पूर्ण स्थानकवासी श्रावक समाज अपनी सामाजिक एकता और एकीकरण की शक्ति से अभिनन्दन करे और इस तपःपूत महर्षि को, एकत्र श्रावक-शक्ति से वन्दन करे ?

आप पूछेंगे, यह श्रावक-एकता सिद्ध कैसे हो ?

मुझे बात सम्भव इसलिए लगती है क्योंकि स्थानकवासी जैन श्रावकों की व्यवहारिकता और सामान्य सांसारिकता पर मुझे भरोसा है। अगर मैं भूल नहीं करता तो प्रबुद्ध श्रावक-श्राविका के लिए सारे स्थानकवासी सम्प्रदाय की एकता के इस युग के, देश-काल के भारी महत्त्व को समझना अपेक्षतया सरल है और यही वह कड़ी है जो एकीकरण का रास्ता सुगम बनायेगी। हम जानते हैं कि श्रमण एकता छिन्न-भिन्न हो जाने पर भी श्रावक एकता अब तक उतनी खण्डित नहीं होने पाई और जरूरत इस बात की है कि श्रावक-एकता की प्रतीक संस्था (यथा—अ० भा० श्वे० स्था० कान्फ्रेन्स) में सभी उपसम्प्रदायों को उचित स्थान हो और वह इस प्रकार के काम-काज में अग्रसर हो जो श्रावक-एकता का मार्ग प्रशस्त करे।

मैं इसी विश्वास का प्रबल समर्थक हूं कि हमारे प्रयत्नों से श्रावक संस्था न केवल बलशाली बने अपितु वह वीर्यवान, जीवप्रद भी हो। अगर किन्हीं कारणों से किसी उपसम्प्रदाय ने उससे अलगाव कर डाला है तो श्रावक सारी शक्ति से उन कारणों का उन्मूलन कर डालें। हमारा अन्तिम लक्ष्य सारे स्थानकवासी समाज का, सम्प्रदाय का एकीकरण है और श्रावक एकता इस मार्ग का पहिला बड़ा पडाव। एक बार श्रावक-एकता प्रस्थापित हो गई तो मुझे इसमें संशय नहीं कि उसका अगला कदम श्रमण-एकता ही होगा।

दूसरे शब्दों में, श्रावक-एकीकरण का अमली अर्थ है, स्थानकवासी श्रावक-श्राविकाओं की भारतीय संस्था का प्रबलीकरण।

क्या मैं देश के बिखरे श्रावक समाज से प्रार्थना करूँ कि वे सम्प्रदाय एकीकरण के महान अनुष्ठान में आगे आकर स्थानकवासी श्रावक-संस्था को मजबूत बनायेंगे ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org